अङ्क-२६
जुलाई-दिसम्बर २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वैदिक कविता की लोक सांस्कृतिक काव्य-धारा

डॉ. विश्व बन्धु

वेद प्राचीन भारत एवं तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का उपलब्ध सबसे प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत है। 1830 ई. में "फ्रीड्रिक रोजन" द्वारा ऋग्वेद के प्रथम प्रकाशन एवं यूरोपीय संस्कृति से प्रभावित तथा संस्कृत-भिन्न भाषा में प्रथम अनुवाद [१] (लैटिन भाषा में अनुवाद) के साथ ही वेद के विषय में प्रचलित परम्परागत विचारों से हटकर वेद की विषयवस्तु एवं अभिप्राय प्रकाशन का उपक्रम प्रारम्भ हुआ। विभिन्न विचारधाराओं से सम्बन्ध रखने वाले विद्वानों ने इस विषय में भिन्न-भिन्न अभिमत रखें। उनके अभिमतों को निम्न कोटियों में रखा जा सकता है-

वेद समाज के वर्ग विशेष तक ही सीमित होने से समग्र लोक-सांस्कृतिक धारा को सहजतया प्रभावित करने तथा उससे प्रभावित होने में अक्षम था ? जैसा कि "मैक्समूलर" ने कहा है-

"The first objection then against our treating the Veda as an historical document is that it is not truly national in its character, does not represent the thoughts of the whole of the population of India, but only of a small minority, namely Brahmans, and not even of the whole class of Brahmans, but only of a small minority of them, namely of the professional Priests." [२]

वैदिक वाङ्मय के मूल स्रोत वेद-संहिताएँ समाज के वर्ग विशेष तथा सामान्य वर्ग की धार्मिक मान्याताओं तथा कृत्यों का सङ्ग्रह मात्र हैं ? जैसा कि "आर.एन.दाण्डेकर" ने कहा है-

"This proto-Vedic religion can be thought of as having been made up of two main strands, namely, the religious beliefs and practices of the classes in the community and those of the masses. The activity of the composition of *Mantras* relating to both these religious strands, which presumably began in Balkh, was continued by the Vedic Aryans during their victorious march towards India, and also after they had settled down in the land of the seven rivers….they then occupied themselves

---

[१] Rosen, Fridericus August (Ed. And Trans.) (1838), *Rigveda-Sanhita, Liber Primus, Sanskrite at Latine,* Wm. H. Allen & co. : London.

[२] Maxmullar, *India: What can it teach us?,* Munshiram manoharlal, Delhi (Indian), p. 77.

was to collect, revise, arrange, and organize their heritage of stray and scattered Mantras. It was out of this activity of *samhitikarana* that the two great collections, namely, the *Rigveda samhita* and the *Atharvaveda Samhita* emerged." [३]

इस स्थिति में भी लोक-संस्कृति की धारा में वेद का प्रभाव नगण्य ही लक्षित होता है।
जे.गोंडा प्रभृति विचारकों के अनुसार, सभी वैदिक शब्दों की मूल भावना जादू और धर्म से मिश्रित है। वैदिक संस्कृति में प्रचलित उत्सव भी शक्ति उत्पन्न करने अथवा जादू और कर्मकाण्ड द्वारा प्रकृति की जीवन्त शक्तियों को प्रेरित करने का उपाय है।

वेद उच्च कोटि के दार्शनिक विचारों एवं आध्यात्मिक अनुभवों का कोष है,जैसा कि "श्री अरविन्द" ने कहा है-

"वेद प्राचीन काल में ज्ञान की एक पवित्र पुस्तक के रूप में आदृत था, यह अंतःस्फुरित कविता का एक विशाल संग्रह माना जाता था,उन "ऋषियों"की-द्रष्टाओं तथा संतों की-कृति माना जाता था जिन्होंने अपने मन द्वारा कुछ घडकर बनाने की जगह एक महान्, व्यापक,शाश्वत तथा अपौरुषेय सत्य को अपने आलोकित मनों के अंदर ग्रहण किया और उसे "मन्त्रों" में मूर्त्त किया।"[४]
इस स्थिति में भी वेद का सम्बन्ध साधारण जन-जीवन से न जुड कर मात्र किसी योगी या साधक के साथ ही जुडता है।

सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द ने वैदिक मन्त्रों का सामाजिक अभिप्राय भी प्रस्तुत किया। उनके अनुसार वैदिक मन्त्रों का प्रयोजन उत्कृष्ट समाज के निर्माण में दशा एवं दिशा निर्देश करना है।परन्तु उनके द्वारा भी वैदिक मन्त्रों में लोक-भाषा, लोक-साहित्य एवं संस्कृति, लोक-समाज एवं समाज के सामान्य वर्ग की उपस्थिति स्फुटतया नहीं दर्शाई गई।

विचारकों के उक्त अभिमतों से यह प्रश्न सहज उपस्थित हो उठता है कि **वैदिक भाषा, दर्शन एवं संस्कृति में तत्कालीन समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व झलकता है या नहीं ? परन्तु एक तथ्य भी सहज ही उपस्थित हो उठता है कि किसी भी प्रसिद्ध एवं चिर-स्थायी साहित्य की नींव लोक-संस्कृति की भूमि पर ही पडती है।**

इस समस्या का आंशिक समाधान वेद के प्रामाणिक भाष्यकार यास्क की उस सहजोक्ति में देखा जा सकता है यहाँ वे वैदिक भाषा को लोक-व्यवहार की भाषा ही कहते है । यथाहि, (*निरुक्तम्, १/२*) "***तेषां मनुष्यवद् देवताऽभिधानम्***' <"**उन शब्दों का मनुष्यों की तरह देवताओं में प्रयोग होता है**">।" वैदिक कवियों द्वारा अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लौकिक भाषा को ही चुनना वेद में लोक-संस्कृति के तत्त्व होने में एक प्रमाण है। **प्रश्न मात्र इतना ही उभर कर आता है कि वैदिक कवियों की भाषा में समाज के अभिजात वर्ग (उच्च तथा शिक्षित वर्ग) के भाषिक तत्त्व परोए हुए है या राज-द्वारों**

---

[३] Dandekar, R.N., *Some Aspects of the History of Hinduism*, Univ. of Poona, Poona, p.33-34.

[४] श्रीअरविन्द, अभयदेव(अनु.),वेद-रहस्य (पूर्वार्द्ध), श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी, पृ.१.

से दूर अशिक्षित,ग्राम्य,साधारण, खेत-खलिहानों, मेहनत-मजदूरी से जुटा हुआ जीवन जीने वाले सामान्य जन-जीवन के भाषिक तत्त्व भी अनुस्यूत हैं ? इसके अतिरिक्त उनके द्वारा अभिव्यक्त विचारों, अभिव्यक्ति-प्रकारों (वचन-भङ्गी आदि) में लोक संस्कृति के कौन-कौन से तत्त्व झलकते हैं?

वैदिक मन्त्रों पर समग्र दृष्टि से विचार करने पर मन्त्रों में लोक-जीवन एवं लोक-संस्कृति का बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रकाशित हो उठता है । एक ओर यहाँ वैदिक मन्त्र प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकरण द्वारा उनसे एकरूपता स्थापित करने के उदात्त भाव, धार्मिक कृत्यों तथा आचार-विचारों को अभिव्यक्त करता है , वहीं दूसरी ओर वही मन्त्र समाज के मध्यम, निम्न मध्यम तथा निम्न वर्ग के लोगों के जीवन को भी दर्शाता है। कहने का भाव वेद की विषयवस्तु मात्र धार्मिक कृत्यादि नहीं है अपितु लोक का स्वभाव या सहज प्रकृत रूप भी उसी विषयवस्तु का दूसरा पहलू है। परन्तु ये दोनों पक्ष परस्पर गुँथे हुए से है। जटिल धार्मिक कृत्यों, आचार-व्यवहार के वर्णन के मध्य सामान्य वर्ग के स्वर को ढूँढने के लिए गहन शोध अपेक्षित है।

प्रस्तुत शोध पत्र निम्नलिखित लक्ष्यों को साधने का अल्प प्रयास मात्र है -

वैदिक मन्त्रों में समाज के निम्न मध्यम तथा निम्न वर्ग से सम्बन्धित प्रसङ्ग एवं लौकिक पदावली का रेखाङ्कन एवं वर्गीकरण; संवाद-सूक्त एवं वैदिक गाथाओं में लोक भाषा के तत्त्वों का अन्वेषण;वैदिक मुहावरों एवं लोकोक्तियाँ का समाज-शास्त्रीय अध्ययन तथा; वैदिक वाक्य में अभिव्यक्ति-भङ्गी इत्यादि के माध्यम से बोल-चाल के तत्त्वों की अन्वीक्षा करना।

वैदिक दर्शन एवं संस्कृति में समाज के सामान्य वर्ग का जीवन-दर्शन एवं लोक-संस्कृति के तत्त्व खोजना । वैदिक मन्त्रों में लोक-संस्कृति, विशेष कर निम्न मध्यम वर्ग का जीवन-दर्शन, उसके रोजमर्रा के जीवन से सम्बन्धित तत्त्व, चाल-चलन, संस्कार एवं रीतियों की झलक प्रस्तुत करना एवं उनका विश्लेषण करना ।

शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य वैदिक मन्त्रों के आध्यात्मिक एवं आधिदैविक विषयवस्तु के दूसरे पहलू अधिभूत की समीक्षा करना है अर्थात् इस विचार के साथ वैदिक मन्त्र की समीक्षा करना कि मन्त्र समाज के मध्यम, निम्न मध्यम तथा निम्न वर्ग के लोगों के जीवन को भी दर्शाता है। एक समूची जिन्दगी की तस्वीर भी झलकती है वैदिक मन्त्रों में-ग्राम्य-जीवन (यथाहि "**ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरि शृंगा अयासः**" (ऋग्वेदः १/१५४/६) ; निघण्टु में पृथिवीवाचक-देवतानामपदों में संकलित ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध रोजमर्रा के साधन जैसे "**ग्रावाणः, उलूखलम्, उलूखलमुसले, वृषभः**"), घर-परिवार (यथाहि, यह प्रार्थना "**इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् । क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे**" (ऋग्वेदः, १०/८५/४२)), लोक-गीतों एवं लोकोक्तियों की तरह नसीहतों को कथाओं में गूँथना (यथाहि, " **न नूनमस्ति नो श्वः, कस्तद्वेद यदद्भुतम्। अन्यस्य चित्तमभिसञ्चरेण्यमुताधीतं विनश्यति**" (ऋग्वेदः, १/१७०/१)), परस्पर कसमें खाना (**आचार्य यास्क ने निरुक्त के साँतवे अध्याय में वैदिक मन्त्रों के विषय-निर्देश में "अथाऽपि शपथाऽभिशापौ" उक्ति से शपथ तथा अभिशाप को स्पष्टतः कहा है।** काम-धंधों में लगे लोग (यथाहि, "**श्रोणामेक उदकं गामवाजति, मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् । आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्, किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः**" (ऋग्वेदः, १/१६१/१०)), उनके साधन (यथाहि, "**मा नस्तोके तनये, मा न आयौ, मा नो गोषु, मा नो अश्वेषु रीरिषः**" (ऋग्वेदः, १/११४/८),

किसान-मजदूर-हलवाहे (यथाहि, **ऋग्वेदः, १०/१४६/४**)- ये सब अपने परिवेश के साथ उपस्थित है यहाँ। कहने का भाव वेद की विषयवस्तु मात्र आध्यात्मिक अनुभव, धार्मिक कृत्यादि एवं आधिदैविक विश्लेषण नहीं है अपितु लोक का स्वभाव या सहज प्रकृत रूप भी उसी विषयवस्तु का दूसरा पहलू है।

"लोक" शब्द से समाज का निम्न मध्यम एवं निम्न वर्ग सूचित है। निम्न मध्यम एवं निम्न वर्ग समाज का वह सामान्य अंश है, जो संख्या में तो गरिष्ठ है परन्तु राजनैतिक तथा सामाजिक शासक-गोष्ठियों से बाहर है। यह वर्ग साधारणतया आर्थिक रूप से दुर्बल और सामाजिक दृष्टि से पिछडा हुआ है। एक वाक्य में समाज का वह अंश जो अभिजात नही हैं, मुख्यतः कृषि, मजदूरी, कुटीर-शिल्प, साधारण व्यवसाय से जीवन निर्वाह करता है। "लोक" शब्द को आधुनिक शिक्षण प्रविधि के पारिभाषिक शब्द "Subaltern" का पर्याय कहा जा सकता है। [५] **राजन्य तथा उच्च वर्ग के अभिजात, प्रथाबद्ध, अलङ्कृत, रुके हुए-से जीवन के विपरीत सामान्य जनों का जीवन-दर्शन तथा संस्कृति विस्तृत, जीवन्त, रोज-मर्रा की समस्याओं में उलझी हुई, पारिवारिक उत्सव-उल्लास, छोटी-बडी खुशियों से गुँथी हुई प्रवाहशील नदी की तरह है- ऐसे जीवन-दर्शन तथा संस्कृति के तत्त्व किसी भी काव्य में विचारना तत्काव्य में लोकधर्मी परम्परायों का अध्ययन है। लोक भाषा, लोक संस्कृति, तथा लोक धर्म इसी जीवन से उपजे हैं। प्रस्तुत शोध-प्रस्ताव के शीर्षक में "लोक" शब्द का यही अर्थ है।** भारतीय-ज्ञान-परम्परा में लोक शब्द शास्त्र के विपरीत जनपद तथा जनपदवासी अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। यथाहि,

"**लोको नाम जनपदवासी जनः। जनपदश्च देश एव**" (अभिनवभारती, भाग २, पृ. २१३, गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, बडौदा)।

लोक-साहित्य का सर्वाधिक प्राचीन अंश अभिचार साहित्य (जादू-टोने, घरेलू स्तर पर किए जाने वाले धार्मिक कृत्य आदि से सम्बन्धित साहित्य) रहा है। ऋग्वेद में बिखरे कुछ अभिचार-साहित्य को विषय की दृष्टि से कई भागों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे, बादल बरसाने की धारणा से सम्बन्धित (मण्डूक-सूक्त), सौत की ओर से पति का मन खींचने की धारणा से सम्बन्धित (ऋग्वेद का दशम मण्डल का १४५ वाँ सूक्त), दुःस्वप्ननाश की धारणा से सम्बन्धित (ऋ. १०/१६४) आदि।

लोक साहित्य का एक ओर अंग है, प्रहेलिका। ऋग्वेद में प्रहेलिकाएँ यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं । प्रहेलिका के अन्त में कहीं-कहीं "**पण्डित होयसो भेद बतावै**" की तरह की चुनौती भी रहती है। ऋग्वेद "१/३५/६" की एक प्रहेलिका है-

"तीन स्वर्ग हैं। दो सविता की गोद हैं। मनुष्यों को जीतने वाला एक स्वर्ग यम के भुवन में है। देवगण (सवितृ पर) वैसे स्थित हैं जैसे मानो रथ की धुरी पर हों। जो यह भेद जानते हों वे यहाँ बोलें।" [६]

---

५ Ranajit Guha defines Subaltern as "The demographic difference between the total Indian population and all those whom we have described as the 'elite'." Guha, Ranajit (1982). "On Some Apects of the Historiography of Colonial India". Subaltern Studies. pp. 1–8.

६ "**तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वी उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्। आणिं न रथ्यममृताधितस्थुर् इह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्॥**"

लोक-साहित्य का तीसरा प्रमुख अंग "लोक-गीत" है। लोकगीतों की परम्परा का उत्स वेद में ढूँढा जा सकता है। ऋग्वेद के नवम मण्डल का ११२वाँ सूक्त "सोम-पान-मत्त" तरुणों का होली-गीत-सा ही जान पडता है। यह सूक्त "पङ्क्ति" छन्द में है और इसके प्रति पञ्चम पाद में "**इन्द्रायेन्द्रो परिस्रव**" की टेक भी है। ऐसा लगता है कि एक व्यक्ति आगे-आगे गा रहा है और अन्य लोग पञ्चम पाद भर दुहराते हैं।

वैदिक मन्त्रों में अभिजात वर्गीय (यज्ञ, उच्च दार्शनिक तत्त्व, सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था आदि से सम्बन्ध रखने वाली) काव्य धारा के अतिरिक्त निम्न दों काव्य धाराओं का साक्षात्कार भी होता है- (१.) **सन्तों, परमहंसों या अवधूतों से सम्बद्ध काव्य धारा, जो अपनाती तो है लोक-जीवन के सहज स्वरूप को तथा उसके द्वारा साधती है विवेक को जागते हुए संसार की असारता को। वैदिक विद्वानों में इस धारा के कवि या वेद-भाष्यकार का विशेष सम्बोधन "परि-व्राजक" है। (२.) लोक-जीवन में रचे बसे कवियों की काव्य धारा, जिसमें स्वभावोक्ति और वस्तु-जगत् के यथार्थ का निरूपण अधिक महत्त्व रखते हैं।**

प्रथम धारा के उदाहरण में ऋग्वेद १/१६४/३२वें मन्त्र[७] का भाव देखें (शास्त्री, शिवनारायण, *निरुक्त के पाँच अध्याय* , इंडोलाजिकल बुक हाउस, वाराणसी: १९७२,पृ.१९७) "**जो पिता गर्भाधान करता है, वह इसके तत्त्व को नहीं समझता। उससे इसका तत्त्व निगूढ ही है अर्थात् वह तो वासना-वश आधान कर देता है; उस गर्भ के जन्म से उसे स्वयं को तथा शिशु को संसार में आने के कारण कितने कष्ट उठाने पडेंगे, यह वह नहीं समझता। वह गर्भ भी कर्म-वश माँ के गर्भ में जेर से लिपटा पडा बार-बार जन्म ले कर जन्म-मरण के कष्ट को पाता है। पिता भी बहुत बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारियों से कष्ट पाता है**"। प्रथम धारा के वैदिक मन्त्रों को कबीर, गुरुनानक, रविदास सरीके सन्त-महात्माओं की वाणी के समान देखा जाना चाहिएँ। प्रसिद्ध संस्कृतज्ञा गौरी धर्मपाल ने प्रकृत तथ्य को मुक्त कण्ठ से प्रतिपादित किया है (Dharmapaul, Gouri, *The Linguistic Atom and the origin of Language,* Ritam, Kolkata: 2010, p.43) -

"The most marvellous thing to note is that a fair amount of the voluminous material of the inspired utterances of the *Rishis* agree, sometimes literally, with those of the mystics and poets of the modern world- Ramakrishna, Ramprasad, Robindronath, Aurobindo, Lalan, Jatindranath, Nazrul, Jivanananda, Dante, Browning, Blake and many others."

वैदिक मन्त्रों में दूसरी काव्य धारा का प्रवाह-

(२.१.) कहीं जुआरी को नसीहत देने वाले मन्त्र में ("**अक्षैर्मादीव्यः,कृषिमित् कृषस्व ,वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः। तत्र गावः कितवः, तत्र जाया ,तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥**" (ऋग्वेदः,

[७] "**य ईं चकार,न सो अस्य वेद य ईं ददर्श,हिरुगिन्नु तस्मात्।स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश ॥**"

१०/३४/१३) <कितवः=हे जुआरी ! तुम; अक्षैः=पासों से; मा=न; दीव्यः=खेल; इत्=इसके स्थान पर; कृषिं कृषस्व=कृषि को अपना; वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः=अपनी मेहनत से कमाए धन को ही सर्वोत्तम जानकर उसमें रमों; तत्र=उस कृषि व्यवसाय में; गावः=भरपूर पशु-धन (की सम्भावना है); तत्र जाया=उसी में पत्नी (का साथ भी निश्चित है); तन्मे=यह सब मुझे; वि चष्टे=विशेष रूप से बोध कराया है ; सवितायमर्यः=सबके प्रेरक ईश्वर ने>) ;

(२.२.) कहीं जाडें के दिनों में वस्त्र-विहीन निर्धन पुरुष के कातर-स्वर को शब्द देने वाले मन्त्र में ("**निष्ट्वक्कासश्चिदिन्नरो भूरि-तोका वृकादिव। बिभ्यस्यन्तो ववाशिरे शिशिरं जीवनाय कम्**" (निरुक्तम्, १/१० से उद्धृत) <निष्ट्वक्कासः=वस्त्रों से रहित; भूरि-तोका=बहुत बच्चों वाले; नरः=मनुष्य; हेमन्त से वैसे ही ;बिभ्यन्तः=डरते हुए; शिशिरं जीवनाय कम्= शिशिर को जीवन के लिए; ववाशिरे=पुकार उठते हैं जैसे; वृकादिव=भेडिये से डरते हुए (दूसरों को पुकारा जाता है)>) ;

(२.३.) धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) की ध्वनि मात्र से ही मांस-भक्षी पक्षियों का मांस की चाह में उडान भरने के यथार्थ वर्णन में ("**वृक्षे-वृक्षे नियतामीमयद्,गौस्ततो वयः प्रपतान्पूरुषादः**" (ऋग्वेदः, १०/२७/२२) <वृक्षे-वृक्षे=हरेक धनुष में (प्रस्तुत मन्त्र में "वृक्ष" शब्द वृक्ष की लकडी से बने धनुष का वाचक है। शब्द का सम्बन्धित अर्थ में इस प्रकार की प्रवृत्ति को संस्कृत व्याकरण की भाषा में "तद्धित-वृत्ति" कहते है);नियता=बँधी हुई; मीमयत्=टन्टनाती है; गौः= डोरी; ततः=उससे; वयः पूरुषादः=मनुष्यों के भक्षक पक्षी; प्रपतान्=उडते है (मांस के अभिलाषी होकर>);

(२.५.) लोक-व्यवहार के कथनों को लौकिक शैली के अनुरूप ही मुहावरों में अभिव्यक्त करते हुए उनके लोकोक्ति स्वभाव को प्रकट करने वाले मन्त्रों में, जैसे कि **"किं भ्राता सद्यदनाथं भवति, किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निरगच्छत" (ऋग्वेदः, १०/१०/११)** <वह भाई कैसा जिसके होते हुए बहन अनाथ रहे और वह बहन कैसी जिसके होते हुए भाई के दुख दूर न हो सके>**; "नावाजिनं वाजिना हासयन्ति, न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति" (ऋग्वेदः, ३/५३/२३) <**(बुद्धिमान् लोग) अश्व-भिन्न को अश्व से नहीं लडाया करते तथा गधे को अश्व के सामने (उसके मुकाबिले पर) नहीं लाया करते।**>"**) ;

(२.४.) युद्ध भूमि में इन्द्र के बुलावे की तुलना कपडे तक उतार लेने वाले नामी-गरामी चोर को देखकर सहायता के लिए दूसरे व्यक्तियों के बुलावे से तथा गाँव में सामूहिक रूप से आयोजित बाज-प्रतियोगिता में बाज के बुलावे से करते हुए लोक में प्रचलित तथ्यों को अपनी अभिव्यक्ति के साधन के रूप में प्रयुक्त करने वाले मन्त्र में ("**उत स्मैनं वस्त्र-मथिं न , तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु । नीचायमानं जसुरि न श्येनं, श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥**" (ऋग्वेदः, ४/३८/५)" <उत स्मैनं= और भी इस इन्द्र के प्रति; वस्त्रमथिं न तायुम्=वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर को देखकर जैसे (मनुष्य सहायता के लिए चिल्ला उठते है वैसे ही); अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु= सङ्ग्राम में मनुष्य चिल्ला उठते है; (और भी) नीचायमानं=नीचे-नीचे उडने वाले; जसुरिम्=पाके धागे से बन्धे हुए; श्येनं न=बाज को जैसे; श्रवश्चाच्छा=(खेल जीतकर)यश-प्रशंसा प्राप्त करने के लिए;पशुमच्च यूथम्=और (खेल जीतकर) भरपूर पशुधन पाने के लिए (बुलाते है)>);

(२.५.) वर्षा ऋतु में मेंढकों की टरटर्राहट से उत्साही वैदिक कवि द्वारा मेंढकों के सजीव वर्णन में **("संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मंडूका अवादिषुः॥"** (ऋग्वेदः, ७/१०३/१) <बाह्मणाः=ब्रह्मनिष्ठ मनुष्यों की तरह; संवत्सरं शशयाना= मानों सारा साल बिल में रहकर कठोर तपस्या रूपी; व्रतचारिणः= व्रत का आचरण करने वाले; मंडूकाः=मेंढक (अभी); पर्जन्यजिन्वितां वाचम्=बादल बरसने से उत्साही वाणी को; प्र अवादिषुः= बोल रहे है।**>)-**

सहजतया अनुभूत किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र वैदिक भाषा, साहित्य, दर्शन एवं संस्कृति के व्यावहारिक पक्ष का उद्घाटन करता है तथा पाश्चात्यों की इस धारणा को प्रमाणों से खण्डित करता है कि वेद का दूर-दूर तक समाज से कई सम्बन्ध न था । इस प्रकार वेद के लोक-काव्यत्व को प्रकाशित करना ही शोध पत्र की मूल धारणा है ।

डॉ. विश्व बन्धु,
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र,
जे.एन.यू., दिल्ली